साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 7, अंक : 22 | प्रति बुधवार, इन्दौर, 19 जनवरी 2022 से 25 जनवरी 2022 | पेज : 8 | कीमत : 3 रुपये

जलवायु परिवर्तन के खतरे से लड़ रहे हैं शीत रेगिस्तान के लोग

नई दिल्ली।कॉर्मिक, सड़क से जुड़ा हुआ दुनिया का सबसे ऊंचा गांव है, जो समुद्र तल से 4,587 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। इसी वजह से यह गांव दुनियाभर के पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहता है। गांव की आबादी सिर्फ 110 है। सर्दियों में बर्फ से ढंकने के कारण यह गांव दुनिया से कट जाता है। जब डाउन टू अर्थ सितंबर के पहले सप्ताह में इस गांव में पहुंचा तो लोग अपने खेतों में व्यस्त थे। ये लोग सितंबर और अक्टूबर के दो महीने बहुत व्यस्त रहते हैं। साल के इन दो महीनों में ही उन्हें इतना काम करना होता है, कि नवंबर से अप्रैल के अगले छह महीने तक घर के भीतर रहने में उन्हें कोई परेशानी न हो, क्योंकि भारी बर्फबारी के कारण वे घर से बाहर नहीं निकल पाते। इस दौरान वे अपनी एकमात्र नगदी फसल मटर तोड़ कर बेचते हैं। जौ की दूसरी फसल काटकर घर में रखते हैं, जिसे वे अपने खाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। जल्दी राशन भी लेते हैं और पशुओं के लिए चारे का इंतजाम भी करते हैं।

छेरिंग अंगदुई उर्फ केसंग परेशान हैं। वह कॉर्मिक गांव के नंबरदार हैं और उनकी पत्नी प्रधान हैं। केसंग बताते हैं कि इस बार मटर की फसल अब तक पकी नहीं है और जौ की फसल भी कमजोर है। यहां जौ और मटर की बिजाई अप्रैल में की जाती है और अगस्त के आखिरी या सितंबर के पहले सप्ताह तक फसल पक जाती है, लेकिन इस साल दोनों फसलें सही समय से नहीं पक पाई। केसंग ने कहा, ÷अगर इस बार मटर के दाम अच्छे नहीं मिले तो पता नहीं, अगले छह माह के लिए वह अपने परिवार के लिए राशन कहां से लाएगा?÷ कॉर्मिक के साथ लगते गांव लांग्चा और हिक्किम एक ही पंचायत में आते हैं। हिक्किम को दुनिया के सबसे ऊंचे डाकघर की वजह से भी जाना जाता है। ये तीनों गांव हिमाचल प्रदेश के जिले लाहौल एवं स्पीति का हिस्सा है, जो अपनी सुंदरता के लिए दुनियाभर में मशहूर है। इसकी वजह है, यहां की जलवायु। इसी वजह से स्पीति भारत के ठंडे मरुस्थल वाले जिलों में शामिल है। भारत में तीन जिले ठंडे रेगिस्तान की श्रेणी में आते हैं, इनमें लाहौल-स्पीति के अलावा हिमाचल का ही किन्नौर और भारत का केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख शामिल है।

लेकिन अपनी अनूठी ठंडी और शुष्क जलवायु के कारण ये इलाके जलवायु परिवर्तन के लिए भी सबसे अधिक संवेदनशील माने जाते हैं। यहां बर्फ गिरने का समय बदल गया है। कम बर्फ गिर रही है। मॉनसून में बारिश कम हो रही है और वैश्विक तापमान के चलते यहां तापमान बढ़ रहा है। दरअसल जब रेगिस्तान की बात होती है तो समझा जाता है कि गर्म, शुष्क रेतीला इलाका, लेकिन इससे इतर शीत रेगिस्तान शुष्क तो होता है, परंतु बेहद ठंडा होने के साथ-साथ अद्भुत खूबसूरत भी होता है। सर्दियों में भारी हिमपात के कारण यह इलाका निर्जन हो जाता है, लेकिन इन इलाकों के भीतर की जलवायु एक भाग से दूसरे भाग में व्यापक रूप से अलग होती है, जिसके चलते यहां कई सूक्ष्म जलवायु क्षेत्र बन जाते हैं। सूक्ष्म जलवायु क्षेत्र से आशय है कि बेहद छोटे-छोटे इलाकों का मौसम अलग-अलग होना। ठंड और शुष्कता के बावजूद ये इलाके जीवन से भरे हुए हैं। यहां के लोगों का जीवन पूरी तरह से बर्फ पर निर्भर है। सर्दियों में पड़ी बर्फ जब मार्च-अप्रैल में पिघल जाती है तो मिट्टी पर बर्फ की नमी ही इन इलाकों में खेतों की सिंचाई का साधन बनती है और इसके बाद लोग बिजाई शुरू कर देते हैं। बेशक भारत के दूसरे इलाकों के मुकाबले ठंडे रेगिस्तान में बेहद कम बारिश होती है, लेकिन मॉनसून के दौरान होने वाली यही कम बारिश भी इन लोगों के लिए अमृत समान होती है। खेतों में लगती फसल के लिए यह बारिश काफी मदद करती है, बल्कि खाली मैदानों में घास निकल आती है, जो पशुओं के लिए चारे के काम आती है। यही बारिश भूजल रिचार्ज करती है और पीने के पानी के स्रोतों (चश्मों) को सूखने से बचाती है। हिमाचल प्रदेश के शीत रेगिस्तानी इलाके स्पीति में मार्च-अप्रैल डेढ़ से दो फुट ही बर्फ पड़ी। यह बर्फ ज्यादा दिन टिक नहीं पाई और बह गई। केसंग कहते हैं कि इस साल स्पीति में जनवरी-फरवरी में बर्फ ही नहीं पड़ी। मार्च-अप्रैल में बर्फ पड़ी, जो डेढ़ से दो फुट रही होगी। बर्फ कमजोर भी थी, जो ज्यादा दिन टिक नहीं पाई और बह गई। जैसे-तैसे मटर और जौ की बिजाई की, लेकिन जुलाई में बारिश नहीं हुई। लगभग 14 किलोमीटर दूर पानी के चश्मे (ग्लेशियर से निकलने वाला स्रोत या झरना) से कूल (नालियों) के माध्यम से पानी लाकर जौ और मटर की फसल को पानी दिया, लेकिन फिर भी इस साल दोनों फसलें अच्छी नहीं हुई हैं। हिक्किम गांव के लोग कॉर्मिक जितने खुशकिस्मत नहीं है। यहां से चश्मा लगभग 25 किलोमीटर दूर है, इसलिए उनके खेतों तक पानी नहीं पहुंच पाता। गांव के छेरिंग छेरेल बताते हैं कि इस साल बारिश नहीं हुई, इसलिए गांव के एक तिहाई खेत खाली छोड़ने पड़े। इन गांवों में औसतन एक परिवार के पास 40 से 55 बीघा खेती की जमीन है। जहां वे अपने परिवार के लायक जौ के अलावा कुछ नगदी सब्जियां उगाते हैं, परिवार का खर्च ही मटर से चलता है। काली मटर यहां की प्राचीन फसल है, लेकिन बाजार में खरीदार न होने के कारण काली मटर केवल अपने लिए उगाते हैं। गांव के लगभग हर घर में होम स्टे है, इस तरह पर्यटकों और ही मटर बेचकर हर परिवार डेढ़ से दो लाख रुपए कमा लेता है। लांग्चा गांव के अंगदुई नोरबु बताते हैं कि उनके जीवन के लिए पशुओं को बहुत महत्व है। हर परिवार के पास याक, गाय, भेड़, बकरियां और गधे होते हैं। इनके लिए गांव के आसपास उगी घास व झाड़ियां काटकर चारे का इंतजाम करते थे, लेकिन अब दूर-दूर जाना पड़ता है। इस साल बारिश भी बहुत कम हुई है। मौसम विज्ञान विभाग के मुताबिक, मॉनसून सीजन 2021 के दौरान लाहौल-स्पीति जिले में 122.8 मिलीमीटर बारिश हुई, जो सामान्य बारिश (394.7 मिमी) से 69 फीसदी कम है।

शीत रेगिस्तान का सबसे बड़ा हिस्सा लद्दाख में है। लगभग 1.17 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले लद्दाख को संसार का सबसे ऊंचा निर्जन पठार कहा जाता है। इसकी ऊंचाई 2,750 मीटर से लेकर 7,672 मीटर है। इतनी ऊंचाई पर स्थित इसकी पहाड़ी चोटियों की वजह से भारतीय मॉनसून के बादल यहां बरस नहीं पाते, इसलिए यहां बारिश बहुत कम होती है। लेह, लद्दाख का प्रशासनिक मुख्यालय है। यहां भी सितंबर के पहले सप्ताह में गर्मी भीषण थी। आमतौर पर सितंबर तक सर्दी शुरू हो जाती है। गर्मी के बीच लेह के आसपास के पहाड़ों में बारिश और बर्फबारी होती थी। यहां की सामान्य मॉनसून वर्षा केवल 37.6 मिमी है लेकिन 2021 में वर्षा केवल 21.9 मिमी हुई, जो 42 प्रतिशत कम थी। इससे कई गांवों के किसानों ने इस सीजन में अपने खेतों को पत्ती छोड़ दिया है। लेह में एलएनसी (लेह न्यूट्रिशन प्रोजेक्ट) के कार्यकारी निदेशक इंद्री पालजोर कहते हैं, ÷पहाड़ों के दक्षिण की ओर ढलान वाले गांवों में स्थिति अधिक विकट है क्योंकि वे पूर्णतः बारिश और बर्फ पर निर्भर हैं।÷ एलएनपी इनमें से कई गांवों में जल संकट को हल करने के लिए कृत्रिम ग्लेशियरों का निर्माण कर रहा है। पालजोर ने भी पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में बर्फबारी में भारी कमी देखी है। पालजोर ने डाउन टू अर्थ से कहा, ÷लगभग 15-20 साल पहले लेह के आसपास के गांवों में, हर घर जौ, आलू, मटर उगाता था और भेड़, गाय, गधे और घोड़ों जैसे पशुओं का पालन-पोषण करता था। लेकिन यह अब न केवल जलवायु परिवर्तन और पानी की अनुपलब्धता के कारण बदल गया है, बल्कि क्षेत्र में विकास गतिविधियों, लोगों के बीच पर्यटन और जीवनशैली में बदलाव के कारण भी बदल गया है÷। एलएनपी के कार्यक्रम प्रबंधक चोटक ग्याल्से का कहना है कि लद्दाख क्षेत्र की जैव विविधता भी बदलती जलवायु से गंभीर रूप से प्रभावित है। इसकी झीलों और आर्द्रभूमि के आसपास बदलाव देखा जा सकता है। ये झीलें ज्यादातर पहाड़ों और ग्लेशियरों में पिघलती बर्फ से बहने वाले झरनों से पोषित होती हैं। यह कहते हैं कि यहां मैगपाई, स्मैरो और रेड बिल चाँ जैसी पक्षियों की संख्या कम हो रही है।

साभार

बड़ी कंपनियों के लिए जंगलों का विनाश बड़ा मुद्दा नहीं

न्यूयार्क। एक तरफ जहां दुनिया के 105 देशों ने हाल ही में वनों के बढ़ते ह्रास को रोकने के लिए 'ग्लासगो लीडर्स डिक्लेरेशन ऑन फॉरेस्ट्स एंड लैंड यूज' पर हस्ताक्षर किए थे। लेकिन वहीं दूसरी तरफ दुनिया की कुछ सबसे प्रभावशाली कंपनियां और वित्तीय संस्थान अभी भी इस मुद्दे को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। यह जानकारी यूके स्थित स्वयंसेवी संगठन ग्लोबल कैनोपी द्वारा जारी एक रिपोर्ट में सामने आई है।

फॉरेस्ट 500 नामक इस रिपोर्ट में पाम आयल, बीफ और लकड़ी जैसे उत्पादों के व्यवसाय से जुड़ी 350 सबसे प्रभावशाली कंपनियों और 150 वित्तीय संस्थानों की पहचान की है। यह विश्व की वो दिग्गज कंपनियां हैं जो वन विनाश को बढ़ावा देने वाली वस्तुओं के उत्पादन, उपयोग या व्यापार से जुड़ी हैं। वहीं जिन बैंकों और वित्तीय संस्थानों को इसमें शामिल किया गया है वो इन वस्तुओं से जुड़े व्यापार के लिए वित्त मुहैया कराते हैं।

अपनी सम्बंधित आपूर्ति श्रंखला और निवेश में वनों के विनाश को रोकने के लिए इन कंपनियों और वित्तीय संस्थानों ने कितनी प्रतिबद्धता जताई है और उनका प्रदर्शन कैसा था, इसके आधार पर इनका आंकलन किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार इन 350 कंपनियों में से करीब एक तिहाई (117 कंपनियों) के पास यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनके उत्पाद वनों के विनाश को बढ़ावा नहीं दे रहे हैं, कोई नीति नहीं है। इस रिपोर्ट में नेस्ले, हरिता ग्रुप, यूनिलीवर पीएलसी, सिंगफ, पेप्सिको, आमागगी, मार्स, कोलगेट पामोलिव, वेल्ट्र, सदासा, शंघाई कंस्ट्रक्शन ग्रुप, टेंग्रेनहोन ग्रुप, टोटल एंटरप्राइज लिमिटेड, इंजियांग टोंगटियांक्सिंग ग्रुप ज्वाइंट-स्टॉक कंपनी लिमिटेड जैसी कंपनियां शामिल थी। यदि सिर्फ भारत की बात करें तो इस रिपोर्ट में जिन 9 कंपनियों को शामिल किया गया है जिनके मुख्यालय भारत में थे उनमें आदित्य बिड़ला ग्रुप, गोदरेज ग्रुप, इमामी लिमिटेड, एलनसन्स प्राइवेट लिमिटेड, अमूल, भारतीय इंटरनेशनल लिमिटेड, फ्यूचर ग्रुप, पतंजलि आयुर्वेद और सुगुना फूड्स शामिल थे। इन 350 कंपनियों में से 72 फीसदी ने सभी उत्पादों की आपूर्ति श्रंखला से होने वाले वन विनाश को रोकने के लिए प्रतिबद्धता नहीं जताई है। हालांकि उन्होंने कुछ उत्पादों को इसमें शामिल जरूर किया है। वहीं जिन कंपनियों ने इसके प्रति प्रतिबद्धता जताई भी है वो उसके लक्ष्यों को हासिल करने के लिए बहुत कम प्रयास कर रहे हैं। वहीं प्रतिबद्धता जताने वाली कई कंपनियां खासतौर पर सोया, बीफ और चमड़े की आपूर्ति श्रृंखला से जुड़ी कंपनियां इस बात का सबूत देने में विफल रही हैं कि वो अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए कैसे काम कर रही हैं। रिपोर्ट के मुताबिक पिछले साल 28 कंपनियों ने वन विनाश को रोकने के लिए नई प्रतिबद्धता प्रकाशित की थी, हालांकि इनमें से केवल 11 कंपनियों ने उन सभी वस्तुओं और उत्पादों को इस प्रतिबद्धता में शामिल किया था जो वनों की कटाई से जुड़े थी। वहीं मूल्यांकन की गई एक भी कंपनी के पास मानवाधिकारों के मामले में व्यापक दृष्टिकोण नहीं था। वहीं उन कंपनियों में से जिन्होंने वन विनाश सम्बन्धी एक भी प्रतिबद्धता जाहिर की थी, उनमें से करीब एक-तिहाई कंपनियां इसका पालन सुनिश्चित करने के लिए अपने स्वयं के आपूर्तिकर्ताओं की निगरानी नहीं कर रही हैं। वहीं 47 फीसदी कंपनियां वन विनाश सम्बन्धी वस्तुओं की कितनी उपयोग कर रही हैं उस बारे में सार्वजनिक तौर पर जानकारी साझा नहीं करती हैं। 410.4 लाख करोड़ रुपए का उधार देने वाले वित्तीय संस्थानों को भी नहीं है जंगलों की फिक्र यदि वित्तीय संस्थानों की बात करें तो उन्होंने वन उत्पादों की आपूर्ति श्रंखला से जुड़ी कंपनियों को 410.4 लाख करोड़ रुपए का वित्त उपलब्ध कराया था। लेकिन इसके बावजूद वह वित्तीय संस्थान इस बात पर बहुत कम ध्यान दे रहे हैं कि जिन कंपनियों को वो वित्त प्रदान कर रहे हैं वो वनों के विनाश के लिए जिम्मेवार नहीं हैं। इनमें से 93 वित्तीय संस्थानों में वनों के विनाश से जुड़ी कोई नीति नहीं है जो उनके निवेश को कवर करती है। गौरतलब है कि इन वित्तीय संस्थानों ने उन कंपनियों को 194 लाख करोड़ रुपए उधार दिए थे, जो वन विनाश को बढ़ावा देने वाली वस्तुओं के उत्पादन, उपयोग या व्यापार से जुड़े थे। इनमें से 23 वित्तीय संस्थान, जिनकी नीतियों में वन विनाश भी शामिल हैं, उन्होंने अपनी इन नीतियों को लागु करने की दिशा में कितनी प्रगति की है इस बारे में जानकारी साझा की थी। वहीं कुछ वित्तीय संस्थान वन विनाश से जुड़े मानवाधिकार सम्बन्धी जोखिम को पहचानते हैं ऐसे में जब हम जानते हैं कि यह जंगल हमारे पर्यावरण, जैव विविधता और जलवायु के दृष्टिकोण से कितने महत्वपूर्ण हैं। हमें जंगलों के बढ़ते विनाश को रोकने के लिए गंभीरता से काम करने की जरूरत है। अब समय कॉप-26 के दौरान वृक्षों की कटाई को रोकने एवं वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के लिए जिस समझौते पर हस्ताक्षर किए थे समय उसे लागु करने का है। यह नई राजनैतिक पहल व्यापक रूप से कानूनी ढांचे का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। वनों के विनाश को रोकने के लिए जवाबदेही स्पष्ट होनी चाहिए। साथ ही इसकी अवहेलना करने पर दंड भी होना चाहिए। वित्तीय क्षेत्रों के लिए भी कड़े नियमों की जरूरत है, जिनका कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए।

समाज

टोंगा की सूनामी ने पूरी दुनिया के लिए बजाई खतरे की घंटी

दिल्ली जलवायु परिवर्तन के नतीजों का खतरा आज पूरी दुनिया पर मंडरा रहा है. इस बीच टोंगा में आई सूनामी ने कुछ ऐसे इशारे दिए हैं, जो दुनियाभर के सबक लेने के लिए काफी हैं.प्रशांत महासागर के दक्षिणी हिस्से में बसा द्वीपीय देश टोंगा. कुछ ही दिन पहले वहां समंदर के नीचे ज्वालामुखी फटने से सूनामी आ गई.

इस सूनामी से ढेर सारा नुकसान तो हुआ ही साथ ही इसने और भी बड़े नुकसान के रास्ते खोल दिए. जलवायु परिवर्तन की वजह से इसके अस्तित्व पर पहले से ही खतरा मंडरा रहा है. विशेषज्ञ कह रहे हैं कि जैसे-जैसे तापमान और समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है, वैसे-वैसे सूनामी, तूफान और लू जैसी आपदाएं बढ़ती जाएंगी. टोंगा को इसका अहसास पहले से है, क्योंकि जिन देशों पर जलवायु परिवर्तन की सबसे ज्यादा मार पड़ेगी, टोंगा उन्हीं में से एक है. जलवायु परिवर्तन पर मुखर टोंगा इसी वजह से टोंगा संयुक्त राष्ट्र में भी जलवायु परिवर्तन पर खूब बात करता है. देश पहले ही कह चुका है कि धरती का तापमान डेढ़ डिग्री से ज्यादा बढ़ेगा, तो टोंगा और इसके जैसे कई द्वीपीय देश समुद्र में समा जाएंगे. ऐसे कई देश दुनियाभर से कह रहे हैं कि जलवायु को लेकर जल्द कदम उठाए जाएं. अपने पक्ष में ये देश वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट का हवाला भी देते हैं, जो कहती है कि कार्बन उत्सर्जन में इन देशों का योगदान महज 0.03 फीसदी है. टोंगा के पड़ोस में ही एक और द्वीपीय देश है फिजी. वहां अंतरराष्ट्रीय संस्था सेव द चिल्ड्रन की सीईओ शायराना अली कहती हैं, हम खुद को हालात के मुताबिक ढालने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन सबको समझना होगा कि पानी कुछ ही मीटर बढ़ता है. इतने में कोई बच्चा मारा जाता है, कोई परिवार मारा जाता है या कोई घर तबाह हो जाता है- आपदाओं की भी नहीं होगी जरूरत ज्वालामुखी में धमाके के बाद 15-15 मीटर ऊंची लहरें टोंगा के तटों से टकराई. इससे कई घर तो तबाह हुए ही, तीन लोगों की मौत भी हो गई. इससे जो सूनामी आई, उसका खतरा अब पूरे प्रशांत महासागर पर मंडराने लगा है. जैसे-जैसे समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा, वैसे-वैसे ये सूनामी और तूफान द्वीपों के और भीतर तक नुकसान पहुंचाएंगे. सिंगापुर में अर्थ ऑब्जरवेटरी के प्रमुख बेंजामिन होरटोन दुनियाभर में समुद्र के जलस्तर का अध्ययन करते हैं.

मनुष्यों की उत्पत्ति का विशद अध्ययन

गत माह क्रिसमस के दिन जेम्स वेब स्पेस टेलीस्कोप को सुदूर अंतरिक्ष में लॉन्च किया गया ताकि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में पता लगाया जा सके। केन्या के चर्चित जीवाश्म विज्ञानी और संरक्षणवद रिचर्ड लीकी का गत सप्ताह 77 वर्ष की आयु में नैरोबी के निकट उनके घर में देहांत हो गया। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा पूर्वी अफ्रीका के एक खास इलाके में मानव जातियों के अध्ययन में बिताया।

यह एक असाधारण ब्रिटिश-केन्याई परिवार से आते थे जिसमें जीवाश्म विज्ञानी और विश्लेषक थे। चार्ल्स डार्विन के बाद मानव की उत्पत्ति के बारे में हमारी समझ बढ़ाने में अगर किसी ने सबसे अधिक मदद की तो वह यह परिवार है। उनके माता-पिता लुई लीकी और मैरी लीकी ने भी इस क्षेत्र में असाधारण काम किए। रिचर्ड की पत्नी मीवी, उनके भाई जॉनथन और बेटी लुईस ने भी ऐसा ही किया। ऐसे मानवों की उत्पत्ति के बारे में निरंतर सामने आ रहे ज्ञान के बीच इस क्षेत्र में इस परिवार के योगदान को सराहने के लिए कुछ समय निकालना उचित होगा।

बीसवीं सदी के मध्य तक अधिकांश पश्चिमी विज्ञानी मानते थे कि मनुष्यों की उत्पत्ति 50,000 से 60,000 वर्ष पहले यूरेशिया में हुआ था। सन 1940 के बाद लीकी परिवार तथा कुछ अन्य लोगों के निरंतर परिश्रम से सामने आई जानकारी से यह निश्चित हुआ कि मनुष्यों की उत्पत्ति अफ्रीका में 20,000 से 30,000 वर्ष पहले हुई थी। मनुष्य की उत्पत्ति 50 से 70 लाख वर्ष पहले से मौजूद वनमानुषों और चिंपांजी परिवार की किसी एक शाखा से हुई।

आरंभ में लीकी और उनकी टीम ने बहुत प्राथमिक परिस्थितियों में एकदम आरंभिक तौर तरीकों के साथ काम किया लेकिन उन्होंने कई अहम खोज कीं। सन 1948 में लेक विक्टोरिया के रुसिंगा आइलैंड पर काम करते हुए मैरी लीकी ने प्रोकोनसुल अफ्रीकनस (बंदर प्रजाति का प्राणी) की खोपड़ी पाई। इसे बहुत लंबे समय तक बंदरों और वनमानुषों का पूर्वज माना जाता था जो करीब 2.5 करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी पर रहता था। अगले कई वर्षों तक उन्होंने अपना ध्यान उत्तरी तंजानिया के 25 मील लंबे ओल्दुवाई जॉर्ज इलाके पर केंद्रित रखा। यह क्षेत्र ग्रेट एनगोरोंगोरो कॉन्सैर्वेशन क्रेटर तथा प्रसिद्ध नैशनल गेम रिजर्व से ज्यादा दूर नहीं था जिसकी यात्रा मैंने पचास वर्ष पहले की थी। सन 1959 में उन्हें वहां एक शुरुआती वनमानुष की खोपड़ी मिली जिसे उन्होंने जिनजानथरोपस का नाम दिया और जो 17 लाख वर्ष पुरानी थी। इससे उन्हें वैश्विक प्रसिद्धि और नैशनल जियोग्राफिक से लंबे समय के लिए फंडिंग मिली। कुछ वर्ष बाद उनकी टीम को वनमानुषों की एक और शाखा के जीवाश्म मिले जो करीब 14 लाख वर्ष पहले हुए थे।

सन 1960 में लुई ने ओल्दुवाई जॉर्ज उत्खनन का निर्देशन मैरी को सौंप दिया और अपना ध्यान संग्रहालयों की स्थापना करने, फंड जुटाने और व्याख्यान देने पर केंद्रित किया। लगभग उसी समय अन्य शुरुआती वानरों तथा मनुष्यों के बीच रिश्तों की महत्ता को लेकर यकीन से भरे लुई ने तीन युवा शोधकर्ताओं जेन गुडाल (चिंपांजी), डायन फॉसी (गुरिल्ला) और बिरुट गालडीकस (ओरांगउटान) को चुना और उन्हें प्रशिक्षित किया कि वे इन जीवों के प्राकृतिक आवास में रहकर पर दीर्घकालिक अध्ययन करें। उम्र के छठे दशक के बाद कमजोर स्वास्थ्य से गुजर रहे लुइ का सन 1972 में निधन हो गया। उनकी मौत के बाद मैरी ने काम जारी रखा और उनकी अहम खोजों में प्रागैतिहासिक लाएतोली पुरातात्विक स्थल (ओल्दुवाई जॉर्ज से 25 मील दूर) पर पाए गए पैरों की छाप काफी प्रसिद्ध है। यह करीब 37 लाख वर्ष पहले ऑस्ट्रालोपिथिकस अफरेंसिस प्रजाति के वनमानुष के के दो पैरों पर चलने का पहला स्पष्ट प्रमाण है। उनके मझले बेटे रिचर्ड लीकी ने कुछ समय सफारी गाइड के रूप में काम करने के बाद जीवाश्म तलाशने का पारिवारिक काम संभाल लिया और 30 वर्ष से भी कम उम्र में उन्होंने एक छोटे विमान से उड़ान भरते समय उत्तरी केन्या में लेक तुरकाना के किनारों पर कुछ विशिष्ट ढांचों को चिह्नित किया। रिचर्ड लीकी और उनके साथियों ने तुरकाना बेसिन में सैकड़ों वनमानुष जीवाश्मों की खोज की जिनमें से प्रमुख हैं- एक होमो हैबिलिस (करीब 23 लाख साल पुराने मानव प्रजाति के जीव) की खोपड़ी जिसे सन 1972 में उनकी पत्नी मीवी ने बहुत मेहनत से जोड़ा था, सन 1984 में उन्होंने होमो इरेक्टस (20 लाख वर्ष पुराने प्राकृतिक मानव) प्रजाति के एक बच्चे का पूरा कंकाल बरामद किया जिसे तुरकाना बॉय कहा गया। लीकी ने कहा कि करीब 30 लाख वर्ष पहले तीन अलग-अलग मनुष्यनुमा जीव एक साथ इस क्षेत्र में रहते थे। उनमें से दो समय के साथ गुजर गये और तीसरा होमो हैबिलिस होमो इरेक्टस बना जो होमो सेपियंस यानी मनुष्य का पूर्वज है। रिचर्ड लीकी ने बतौर जीवाश्म विज्ञानी अपने प्रसिद्धि और सफलता का इस्तेमाल संग्रहालयों के लिए फंड जुटाने (वह सन 1968 से 20 वर्षों तक केन्या के राष्ट्रीय संग्रहालय के प्रमुख रहे) तथा एक मजबूत तथा विविध अनुशासन वाले शोध ढांचे को तैयार करने में लगे रहे। सन 1989 में उन्हें केन्या वन्यजीव सेवा का प्रमुख बनाया गया। उन्होंने हाथी दांत के तस्करों के खिलाफ हल्ला बोला और कई ताकतवर दुश्मन बना लिए। सन 1993 में एक विमान दुर्घटना में उन्हें अपने दोनों पैर गंवाने पड़े। उन्होंने राजनीति में आने का नाकाम प्रयास किया और फिर डेनियल अराप मोई सरकार में दो वर्ष कैबिनेट सचिव के रूप में काम किया। अपने जीवन के आखिरी साल उन्होंने न्यूयॉर्क के स्टोनी ब्रूक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में बिताए। वह तुरकाना बेसिन संस्थान के प्रमुख रहे और उन्होंने दुनिया भर में व्याख्यान दिए।

कुछ अनुमानों के मुताबिक जीवाश्मों की तलाश और विश्लेषण को लेकर लीकी परिवार का योगदान मानव व्युत्पत्ति से संबंधित कुल जीवाश्म प्रमाणों के करीब आधे के बराबर है। सन 1940 के बाद इस क्षेत्र में हुए काम को लेकर कई नतीजे निकाले जा सकते हैं। पहला, मनुष्य की उत्पत्ति 60 लाख वर्ष पहले तक विस्तारित है। दूसरा चूंकि जीवाश्म रिकॉर्ड अपनी प्रकृति के अनुसार अभी भी काफी छोटा हुआ है इसलिए मानव की उत्पत्ति को लेकर हमारी समझ अभी भी विकसित हो रही है। तीसरा, होमो सेपियंस का तीन लाख वर्ष पुराना इतिहास अन्य जीवों (मनुष्य जैसे अन्य जीवों समेत) के लंबे इतिहास की तुलना में बहुत छोटा है।

अंतिम और सबसे अधिक चिंतित करने वाली बात यह है कि होमो सेपियंस न केवल अन्य प्रजातियों के लिए बल्कि मनुष्यों के लिए भी सर्वाधिक घातक साबित हुए हैं। उसके कदमों का परिणाम संपूर्ण उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त करता दिख रहा है।

-सागर

कचरा उत्पादन पूरी तरह समाप्त करना ही बचाव

भारत अपने यहां कचरे से निपटने के लिए तेजी से नीतियां तैयार कर रहा है। कचरा यानी घरों, संस्थानों और कारखानों में चीजों के इस्तेमाल से निकलने वाला अवशिष्ट। अब इसका प्रभाव हमारी गतिविधियों पर भी नजर आना चाहिए। हमारे %कचरे% को ऐसा संसाधन बनना चाहिए जिस पर दोबारा काम हो, दोबारा इस्तेमाल हो और जिसका पुनर्चक्रण हो सके। ऐसा करने से हमारी दुनिया में वस्तुओं का इस्तेमाल कम हो सकेगा और पर्यावरण को पहुंचने वाले नुकसान पर भी नियंत्रण किया जा सकेगा।

यह उपाय सबके लिए लाभदायक है। हमें पता है कि जैसे-जैसे हमारे समाज अमीर और शहरी होते जाते हैं वैसे-वैसे ठोस कचरे की प्रकृति भी बदलती जाती है। जैविक अपघटन लायक कचरे के बजाय आम परिवार प्लास्टिक, कागज, धातु तथा अन्य ऐसे कचरे ज्यादा निकालते हैं जो पर्यावरण के अनुकूल नहीं होते। प्रति व्यक्ति आधार पर उत्पादित कचरे की मात्रा भी बढ़ती है। देश के शहरी इलाकों में से कई में पहले ही कचरे का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ चुका है। सन 2000 में जब पहली बार नगर निकायों के लिए ठोस कचरे से संबंधित नियम अधिसूचित किए गए तब वे इस विचार पर आधारित थे कि कचरे को संग्रहीत किया जाए, वाहन से ले जाया जाए और किसी दूरवर्ती सुरक्षित जगह पर निपटाया जाए। इसका लक्ष्य यह था कि हम कचरे को अपने आसपास से हटाकर अपने शहरों को साफ रखें। परंतु यह नीति व्यावहारिक स्तर पर नाकाम रही और हमारे शहरों में कचरे का ढेर एकत्रित होता गया। नगर निकायों की क्षमता में कमी की वजह से जो कचरा इकट्ठा करके दूर नहीं ले जाया जा सका वह हमारे घरों के आसपास एकत्रित होता रहा। जो कचरा संग्रहीत किया गया उसे भी कहीं फेंका जाता और यह कचरा आज शर्मिंदा करने वाले कचरे के पहाड़ों में बदल चुका है। बीते कुछ वर्षों के दौरान देश में कचरा प्रबंधन की रणनीति में काफी बदलाव आया है। मौजूदा नीति की बात करें तो केंद्र सरकार की स्वच्छ भारत मिशन (एसबीएम) 2.0 में कचरे को अलग-अलग करने, सूखे और गीले कचरे का प्रसंस्करण करने और कचरा फेंकने के

लिए निर्धारित लैंडफिल साइट पर भेजे जाने वाले कचरे को न्यूनतम करने का प्रावधान किया गया। एसबीएम 2.0 के दिशानिर्देशों के अनुसार जैवअपघटन के लिए अनुपयुक्त कचरा जिसे किसी भी तरह उपचारित नहीं किया जा सकता उसे किसी भी हालत में कुल कचरे के 20 फीसदी से अधिक नहीं होना चाहिए और केवल इसे ही लैंडफिल की जगहों पर भेजा जाना चाहिए। इस हिसाब से दिशानिर्देशों में कहा गया है कि शहरों में कचरा फेंकना पूरी तरह बंद होना चाहिए। उन्हें अपने पूरे कचरे का भलीभांति प्रसंस्करण करना चाहिए। दिशानिर्देशों में जोर दिया गया है कि कचरे से ऊर्जा तैयार करने की परियोजनाएं वित्तीय और परिचालन के मामले में तभी व्यवहार्य हो सकती हैं जब उन्हें रोजाना 150 से 200 टन उच्च कैलोरिफिक वैल्यू वाला ऐसा कचरा मिले जो छांटा हुआ तथा सूखा हुआ हो और जिसका पुनर्चक्रण संभव न हो।

हमने यह भी सीखा है कि ऐसे संयंत्र बिना इसके संयंत्र अपनी पूरी क्षमता से काम नहीं कर पाएगा और निष्क्रिय हो जाएगा। दिशानिर्देश यह अवसर भी मुहैया कराते हैं कि 3,000 से अधिक लैंडफिल साइट जहां केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मुताबिक करीब 80 करोड़ टन कचरा फेंका जाता है, उसे दोबारा इस्तेमाल में लाया जा सकता है। इससे न केवल मूल्यवान जमीन मुक्त होगी जिस पर हरियाली लगाई जा सकती है और अन्य उपयुक्त इस्तेमाल किया जा सकता है, बल्कि पर्यावरण से जुड़ी आपदाओं को भी टाला जा सकता है। इसके लिए खासतौर पर तैयार नीतियों की आवश्यकता है ताकि इन लैंडफिल वाली जगहों से निकलने वाली सामग्री का समुचित इस्तेमाल हो सके। शहरों को भी अब इन जगहों पर नया कचरा डालने से बचना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो यहां का कचरा कभी खत्म नहीं होगा।

अच्छी खबर यह है कि देश की ठोस कचरा प्रबंधन नीति को अब इस प्रकार तैयार किया जा रहा है कि ठोस कचरे को दोबारा इस्तेमाल किया जा सके। यह रुख सही मायनों में एक चक्रीय अर्थव्यवस्था पर केंद्रित है। इस नीति में कचरे को पूरी तरह समाप्त करने और विभिन्न सामग्रियों को पूरी तरह दोबारा इस्तेमाल करने की बात शामिल है। ऐसे में समय के साथ हमें यह भी पता चलेगा कि कौन से पदार्थ दोबारा इस्तेमाल नहीं किए जा सकते हैं। हम उनका इस्तेमाल कम कर सकते हैं। इससे नीतियां और व्यवहार पर्यावरण के अधिक अनुकूल होंगे। उस दृष्टि से देखें तो नीति बन चुकी है लेकिन हमारे व्यवहार में बदलाव शेष है। सबसे बड़ी समस्या है कचरे को स्रोत के स्तर पर अलग-अलग करना। अगर घरों में कचरे को छांट भी लिया जाए तो इसे अलग-अलग प्रसंस्करण इकाई पहुंचाना मुश्किल है। वास्तव में प्रसंस्करण इसलिए हो पाता है क्योंकि कुछ लोगों की आजीविका हमारे कचरे पर टिकी है। मसलन कचरा बीनने वाले। शहरों के प्रबंधक कचरे के प्रबंधन के लिए अलग-अलग विकल्पों पर काम कर रहे हैं ताकि इससे राजस्व जुट सके। सबसे बुरी बात यह है कि शहरों में प्लास्टिक कचरा तेजी से बढ़ रहा है। हमें मानना होगा कि हमारे इस्तेमाल वाले प्लास्टिक का पुनर्चक्रण नहीं हो सकता इसलिए इसका इस्तेमाल बंद करना होगा। एकल इस्तेमाल वाले प्लास्टिक को लेकर हमारी मौजूदा नीति इस बड़ी समस्या से निपटने के लिए अपर्याप्त है।

जरूरत इस बात की है कि कचरा प्रबंधन के नए तरीके सीखे जाएं। इसके लिए सबसे आवश्यक है यह जानना कि क्या कारगर है और क्यों? इसीलिए सेंटर फॉर साइंस ऐंड एन्वॉयरनमेंट ने नीति आयोग के साथ मिलकर एक दस्तावेज तैयार किया है जिससे शहरों के कचरे के अनुसार उनके निपटान के नए सबक सीखे जा सकते हैं। इनको अपनाने की आवश्यकता है। यही बदलाव का सही अवसर है।

एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स, हर साल ले रहा है करीब 13 लाख जानें

नई दिल्ली। दुनिया के सामने एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स (एएमआर) यानी रोगाणुरोधी प्रतिरोध का खतरा तेजी से बढ़ता जा रहा है, जिसे और नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हाल ही में इंस्टिट्यूट फॉर हेल्थ मैट्रिक्स एंड इवैल्यूएशन (आईएचएमई) द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स ने सीधे तौर पर 12.7 लाख लोगों की जान ली थी। वहीं अनुमान है कि 2019 में मरने वाले 49.5 लाख लोग कम से कम एक दवा प्रतिरोधी संक्रमण से पीड़ित थे। जर्नल लैंसेट में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार एएमआर, मलेरिया और एड्स से भी ज्यादा लोगों की जान ले रहा है। गौरतलब है कि 2019 में वैश्विक स्तर पर एड्स से 6,80,000 लोगों की जान गई थी, वहीं मलेरिया 6,27,000 मौतों की वजह था। यदि संक्रमण से होने वाली मौतों को देखें तो इस लिहाज से एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स का नंबर कोविड-19 और ट्यूबरक्लोसिस (टीबी) के बाद आता है।लैंसेट में प्रकाशित यह रिपोर्ट अंतरराष्ट्रीय शोधकर्ताओं की एक टीम द्वारा 204 देशों में एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स के कारण होती मौतों के विश्लेषण पर आधारित है। अपनी इस रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने 23 रोगजनकों और 88 पैथोजन और दवाओं के संयोजन से होने वाली मौतों का अनुमान लगाया है। यहां यह समझना महत्वपूर्ण है कि एंटीबायोटिक रेसिस्टेन्स क्या होता है और यह समस्या कब पैदा होती है। इस सवाल का जवाब हमारी एंटीबायोटिक दवाओं में छुपा है, यह वो दवाएं हैं जो किसी मरीज की जान बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। पर जब इन जीवनरक्षक दवाओं का स्वास्थ्य के क्षेत्र में धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जाता है, तो वो एक बड़ी समस्या पैदा कर देती है। रोगाणुरोधी प्रतिरोध तब पैदा होता है, बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्मजीव जैसे बैक्टीरिया, कवक, वायरस, और परजीवी, इन एंटीबायोटिक्स दवाओं के लगातार संपर्क में आने के कारण अपने आप को इन दवाओं के अनुरूप ढाल लेते हैं, अपने शरीर में किए बदलावों के चलते वो धीरे-धीरे इन दवाओं के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लेते हैं जिसकी वजह से यह दवाएं उन रोगाणुओं पर असर नहीं करती हैं। इसकी वजह से रोगी का संक्रमण जल्द ठीक नहीं होता। रिपोर्ट के मुताबिक एएमआर से होने वाली अधिकांश मौतें सांस से जुड़े संक्रमण जैसे निमोनिया और रक्त में होने वाले संक्रमण का नतीजा थी। गौरतलब है कि सांस सम्बन्धी संक्रमण के कारण होने वाली 15 लाख मौतों का सम्बन्ध एएमआर से था।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता के लिए प्रतिक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाडिया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008